पुस्तक १ लुं.

श्री

संबोधसत्तरि.

मूल अने भाषांतर.

छपावी प्रसिद्ध करनार

श्री जैनविद्याशाळा

डोशीवाडानी पोल, अमदावाद.

अमदावाद

युनियन प्रिन्टिंग प्रेस कंपनी लिमिटेड.

संवत १९५३ सने १८९७

किम्मत बे आना.

श्री

संबोधसत्तरि.

मूल अने भाषांतर.

छपावी प्रसिद्ध करनार

श्री जैनविद्याशाला.

डोशीवाडानी पोल, अमदावाद.

अमदावाद

युनियन प्रिन्टिंग प्रेस कंपनी लिमिटेड.

संवत १९५३ सने १८९७

किम्मत बे आना.

श्री

संबोधसत्तरि.

(आर्यावृत्तम्)

नमिऊण तिलोअगुरुं,
लोआलोअप्पयासयं वीरं ॥
संबोहसत्तरि-महं,
रएमि उद्धारगाहाहिं ॥ १ ॥

स्वर्ग, मृत्यु अने पाताल रूप त्रण लोकना गुरु अने लोकालोकना प्रकाशक एवा श्री वीरस्वामीने नमस्कार करीने सूत्रोमांथी गाथाओ उद्धरीने हुं संबोधसत्तरि नामे ग्रंथ रचुं छुं. ॥ १ ॥

सेयंबरो य आसं-
बरो य बुद्धो अ अहव अन्नो वा ॥
समभावभाविअप्पा,

लहेइ मुक्खं न संदेहो ॥ २ ॥

च्हाय श्वेतांबर होय, दिगंबर होय, बौध होय अथवा अन्य होय, परंतु जेनो आत्मा समभावे भावित होय, ते मोक्ष पामे; तेमां संदेह नथी. ॥ २ ॥

देव, धर्म अने गुरुनुं स्वरूप.

अठ्ठदसदोसरहिओ,
देवो धम्मोवि निउणदयसहिओ ॥
सुगुरूवि बंभयारी,
आरंभपरिग्गहा विरओ ॥ ३ ॥

अढार दूषणे रहित देव, निपुण दयाये युक्त धर्म, तेम ज ब्रह्मचारी अने आरंभ परिग्रहथी विरक्त होय; ते सुगुरु जाणवा. ॥ ३ ॥

हवे प्रथम देवनां अढार दूषणो बतावे छे. जे नाश पामवाथी ज देवपणुं प्राप्त थाय छे.

अन्नाण कोह मय मा-
ण लोह माया रई य अरई य ॥

निद्दा सोअ अलियवय-

ण चोरिआ मच्छर भया य ॥ ४ ॥

पाणिवह पेम कीला-

पसंग हासा य जस्स ए दोसा ॥

अट्ठारसदोसे पणट्ठा,

नमामि देवाहिदेवं तं ॥ ५ ॥

अज्ञान, क्रोध, मद, मान, लोभ, माया, रति, अ रति, निद्रा, शोक, असत्य वचन, चोरी, मच्छर, भय, प्राणिवध (जीवहिंसा), प्रेम, क्रीडाप्रसंग अने हास्य; ए अढार दूषणो जेनामांथी नाश पाम्यां छे; ते देवाधिदेवने नमस्कार करुं छुं. ॥ ४ ॥ ५ ॥

धर्मनुं स्वरूप.

सव्वाओवि नईओ,

कमेण जह सायरंमि निवडंति ॥

तह भगवई अहिंसिं,

सव्वे धम्मा सम्मिल्लंति ॥ ६ ॥

जेम सर्व नदीओ अनुक्रमे समुद्रमां आवीने मळे छे, तेम भगवति अहिंसा (दया)मां पण सर्व धर्म आवीने मळे छे. ॥ ६ ॥

गुरुनुं स्वरूप.

ससरीरेवि निरीहा,
बज्झब्भिंतरपरिग्गहविमुक्का ॥
धम्मोवगरणमित्तं,
धरंति चारित्तरक्खट्ठा ॥ ७ ॥
पंचिंदियदमणपरा,
जिणुत्तसिद्धंतगहियपरमत्था ॥
पंचसमिया तिगुत्ता,
सरणं मह एरिसा गुरुणो ॥ ८ ॥

पोताना शरीरने विषे पण इच्छा विनाना, बाह्य अने आभ्यंतर परिग्रहथी विमुक्त थएला, चारित्रनी रक्षाने अर्थे ज मात्र धर्मोपकरणने धारण करनारा, पांच इंद्रियोने दमन करवामां तत्पर, जिनोक्त सिद्धांतथी

ग्रहण कर्यो छे परमार्थ जेणे, पांच समितिए सामि ता अने त्रण गुप्तिए गुप्ता; एवा गुरु महाराजनुं मने शरण थाओ. ॥ ७ ॥ ८ ॥

कुगुरुनुं स्वरूप.

पासत्थो ओसन्नो,
होइ कुसीलो तहेव संसत्तो ॥
अहछंदोवि य ए ए,
अवंदणिज्जा जिणमयंमि ॥ ९ ॥

पासत्थो, ओसन्नो, कुशीलियो तेम ज संसक्तो अने यथाच्छंदो; एओ जिनमतने विषे अवंदनीक छे.॥ ९ ॥

कुगुरुने वंदन करवानुं फल.

पासत्थाइवंदमाण-
स्स नेव कित्ती न निज्जरा होई ॥
जायइ कायकिलेसो,
बंधो कम्मस्स आणा ॥ १० ॥

पूर्वे जेमनां नाम दाख्यां छे एवा पासत्थादिकने

वंदन करनार जनोनी कीर्त्ति थती नथी, निर्ज्जरा--कर्मक्षय ते पण थतो नथी, परंतु कायाने क्लेश थाय छे. वंदन करवाना प्रयासथी—महेनतथी आठे प्रकारना कर्मोनो बंध थाय छे अने जिनाज्ञानो भंग थाय छे. ॥ १० ॥

हवे पासत्था विगेरेमां जेओ ब्रह्मचर्यथी रहित, स्त्री विलासने इच्छनारा अने लंपट होय छे, तेमने नमस्कार करनारने पूर्वोक्त गेरलाभ थाय छे; परंतु नमस्कार करावनारने शुं गेरलाभ थाय छे ? ते कहे छे.

जे बंभचेरभट्ठा,
पाए पाडंति बंभयारीणं ॥
ते हुंति टुंटमुंटा,
बोहिवि सुदुल्लहा तेसिं ॥ ११ ॥

जे ब्रह्मचर्य भ्रष्ट पुरुष, ब्रह्मचारी पुरुषने पोताने पगे लगाडे छे, ते आगला भवमां लूला पांगला थाय छे अने सम्यक्त्व पण तेने अत्यंत दुर्लभ थइ

पडे छे. ॥ ११ ॥

दंसणभट्ठो भट्ठो,
दंसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाणं ॥
सिज्झंति चरणरहिआ,
दंसणरहिआ न सिज्झंति ॥ १२ ॥

दर्शन जे सम्यक्त्व तेथी जे भ्रष्ट, ते भ्रष्ट कहेवाय छे. दर्शनभ्रष्टने निर्वाणनी प्राप्ति थती नथी. (द्रव्य) चारित्र रहित सिद्धिपदने पामे छे पण सम्यक्त्व रहित सिद्धिपद पामता नथी. ॥ १२ ॥

हवे जिनाज्ञानो अतिक्रम न करवा संबंधी कहेछे.

तित्थयरसमो सूरी,
सम्मं जो जिणमयं पयासेई ॥
आणाइ अइक्कंतो,
सो कापुरिसो न सप्पुरिसो ॥ १३ ॥

तीर्थंकरना जेवा आचार्य छे, जे सम्यक् प्रकारे जिनमतने प्रकासे छे, परंतु आणा–जिनाज्ञानो अ

तिक्रम करे छे, तो तेने कुत्सित पुरुष जाणवा पण सत्पुरुष न जाणवा. ॥ १३ ॥

जह लोहसिला अप्पं-
पि बोलए तह विलग्गपुरिसंपि ॥
इय सारंभो य गुरू,
परमप्पाणं च बोलेई ॥ १४ ॥

जेम लोहमय शिला पोते बूडे छे अने तेने वळगेला--तेनी उपर रहेला मनुष्यने पण बूडाडे छे, तेम सारंभी--आरंभे सहित गुरु, बीजा जेओ तेना उपासक होय छे तेने अने पोताने--पोताना आत्माने बन्नेने बूडाडे छे. ॥ १४ ॥

किइकम्मं च पसंसा,
सुहसीलजणंमि कम्मबंधाय ॥
जे जे पमायठाणा,
ते ते उववूहिया हुंति ॥ १५ ॥

(अनुष्टुब् वृत्तम्.)

एवं णाऊण संसग्गि,
दंसणालावसंथवं ॥
संवासं च हियाकंखी,
सव्वोवा हिं वज्जए ॥ १६ ॥

कृतिकर्म-द्वादशावर्त्त वंदन अने प्रशंसा, सुखशीलिया-भ्रष्टाचारी गुरुनी करे सते कर्मबंधनने अर्थे थाय छे अने ए प्रमाणे करवाथी प्रमादनां जे जे स्थानको वधारे सेवन थाय छे, तेनो वृद्धि करनार ते वंदना प्रशंसा करवावालो थाय छे. ए प्रमाणे जाणीने पासत्थादिक कुगुरुनो तथा सारंभी अने सुखशील गुरुनो संसर्ग, तेमनुं दर्शन, तेमनी साथे आलाप संलाप, तेमनी स्तुति अने तेमनो सहवास पोतानुं हितवांछक मनुष्य सर्व उपाये करीने वर्जे छे.

हवे चारित्र ग्रहण कर्या पछी जेमना भग्न प्रणाम थया होय छे तेने माटे कहे छे.

(आर्यावृत्तम्.)

अहिगिलइ गलइ उअरं,
अहवा पच्चुग्गलंति नयणाइं ॥
हा विसमा कज्जगई,
अहिणा छच्छुंदरि गहिज्जा ॥ १७ ॥

(चारित्र ग्रहण कर्या पछी जेना शिथिल प्रणाम थया होय छे, तेने सर्पे छछुंदर ग्रहण कर्या बराबर न्याय थाय छे, ते दृष्टांत बतावबा माटे कहे छे.) सर्प जो छछुंदरने मुखमां ग्रहण कर्या पछी गली जाय तो तेनुं उदर गली जाय छे अने जो पाछुं काढी नांखे छे, तो नेत्र नाश पामे छे ! हा इति खेदे ! कार्यनी गति विषम थई छे के, सर्पे छछुंदर ग्रहण करी !

हवे एवा प्रणामवालाने स्थिर करवाने चारित्रधर्मनुं विशेषं प्रकारे सर्वोत्कृष्टपणुं बतावबा कहे छे.

को चक्कवट्टिरिद्धिं,
चइउं दासत्तणं समभिलसई ॥
को व रयणाइं मुत्तुं,

परिगिन्हइ उवलखंडाई ॥ १८ ॥

चक्रवार्त्तिपणानी ऋद्धिने त्यजी दईने दासपणानो अभिलाष कोण करे? वली रत्नने मूकी दइने पत्थरनो कक्कडो कोण ग्रहण करे? अर्थात् जे मूर्ख होय अने लाभालाभना विचारथी अजाण होय ते तेम करे. ॥ १८ ॥

हवे प्राप्त थयेलुं दुःख नाश थशे एम दृष्टांतवडे सिद्ध करवा माटे कहे छे.

नेरइयाणवि दुख्खं,
जिज्झइ कालेण किं पुण नराणं ॥
ता न चिरं तुह होई,
दुख्खमिणं मा समुच्चियसु ॥ १९ ॥

नारकीनां दुःख पण काले करीने नाश पामे छे, तो मनुष्यने माटे शुं कहेवुं? ते माटे तने आ दुःख घणा काल सूधी नहि रहे, तेथी तुं खेद न कर.॥ १९॥

चारित्र ग्रहण करीने छोडी देवुं, ते बहु ज अनि

ष्ट छे एम बतावता माटे कहे छे.

वरं अग्गिमि पवेसो,
वरं विसुद्धेणकम्मणा मरणं ॥
मा गहियव्वयभंगो,
मा जीअं खलिअसीलस्स ॥ २० ॥

अग्निमां प्रवेश करवो ते श्रेष्ठ छे, विशुद्धकर्म जे अणसण करीने मरण पामवुं ते पण श्रेष्ठ छे, परंतु ग्रहण करेला व्रतनो भंग करवो ते श्रेष्ठ नथी. तेम ज शीलमां स्खलना पमाडनारे जीववुं पण श्रेष्ठ नथी.

प्रसंगे श्रद्धानी दृढता करवा माटे समकितनुं स्वरूप, समकितनी दुर्लभता अने समकितनुं फल बतावे छे.

अरिहं देवो गुरुणो,
सुसाहुणो जिणमयं मह पमाणं ॥
इच्चाइ सुहो भावो,
सम्मत्तं बिंति जगगुरुणो ॥ २१ ॥

अरिहंत देव, सुसाधु गुरु अने जैनशासन, ते म्हारे

प्रमाण छे—इत्यादि ज्यां शुभ भाव होय छे, त्यां जगत् गुरु तीर्थंकर महाराज सम्यक्त्व कहे छे. २१

सम्यक्त्वनी दुर्लभता.

लब्भइ सुरसामित्तं,
लब्भइ पहुअत्तणं न संदेहो ॥
एगं नवरि न लब्भइ,
दुल्लहरयणं च सम्मत्तं ॥ २२ ॥

देवोनुं स्वामीपणुं—इंद्रपणुं पामीए अने प्रभुता—ऐश्वर्यता—ठकुराइपणुं पण पामीए. एमां कंइ संदेह जेवुं नथी, परंतु विशेष प्रकारे विचारतां एक दुर्लभरत्न—चिंतामणिरत्न सदृश जे सम्यक्त्व ते न पामीए. २२

सम्यक्त्वनुं फल.

सम्मत्तंमि उ लद्धे,
वेमाणिज्जं न बंधए आउं ॥
जइवि न सम्मत्तजढो,
अहव न बद्धाउओ पुव्विं ॥ २३ ॥

सम्यक्त्व प्राप्त करे सते प्राणी वैमानिक देवताना आयुष्य शिवाय बीजुं आयुष्य न बांधे; पण जो तेणे सम्यक्त्व प्राप्त करीने पाछुं वमी नांख्युं न होय तो, अथवा सम्यक्त्व प्राप्तिनी पूर्वे कोइ अन्य गतिनुं निकाचित आयुष्य न बांध्युं होय तो ए प्रमाणे समजवुं. ॥ २३ ॥

सामायिकनुं फल.

दिवसे दिवसे लक्खं,
देइ सुवन्नस्स खंडियं एगो ॥
एगो पुण सामाइयं,
करेइ न पहुप्पए तस्स ॥ २४ ॥

कोइ पुरुष दिन दिन प्रत्ये लाख खांडी सुवर्ण आपे छे अने कोइ पुरुष सामायिक करे छे; तो ते सामायिक करनार पुरुषनी तुल्यता—बरोबरी करवाने सुवर्णनी खांडी आपनार पुरुष थतो नथी. अर्थात् सामायिकनुं फल विशेष छे. ॥ २४ ॥

सामायिकमां स्थित पुरुष केवो होय ?

निंदपसंसासु समो,
समो अ माणावमाणकारीसु ॥
समसयणपरियणमणो,
सामाइयसंगओ जीवो ॥ २५ ॥

निंदा अने प्रशंसामां, मान अने अपमानमां तथा स्वजन अने परजनमां जेनुं मन समान छे, तेने सामायिकसंगत जीव कहीए. अर्थात् सामायिकमां स्थित पुरुष एवो होय. ॥ २५ ॥

निरर्थक सामायिकनुं लक्षण.

सामाइयं तु काउं,
गिहिकज्जं जोवि चिंतए सड्ढो ॥
अट्टवसट्टोवगओ,
निरत्थयं तस्स सामाइयं ॥ २६ ॥

जो पण श्रावक सामायिक करतो सतो गृहकार्यने चिंतवे अने आर्त्त रौद्र ध्यानने वश्य थाय, तो तेनुं

सामायिक निरर्थक छे.॥ २६ ॥

आचार्यना छत्रीश गुण.

पडिरूवाइ चउद्दस,
खंतीमाई य दसविहो धम्मो ॥
बारस य भावणाओ,
सूरिगुणा हुंति छत्तोसं ॥ २७ ॥

(प्रतिरूप १, तेजस्वी २, जुगप्रधान--उत्कृष्ट आगमना पारगामी अर्थात् सर्व शास्त्रना जाण ३, मधुर वचनवाला ४, गंभीर ५, धैर्यवान् ६, उपदेशमां तत्पर अने रूडा आचारवाला ७, सांभलेलुं नहि भूली जनारा ८, सौम्य ९, संग्रहसील १०, अभिग्रह मतिवाला ११, विकथा नहि करनार १२, अ चपल १३ अने प्रशांत हृदयवाला १४. ए) प्रतिरूपादिक चौद गुण; (क्षमा १, आर्जव २, मार्दव ३, मुक्ति ४, तप ५, संयम ६, सत्य ७, शौच ८, अकिंचन ९, ब्रह्मचर्य १० ए) क्षमादिक

दश प्रकारनो यतिधर्म अने (अनित्य १, अशरण २, संसार ३, एकत्व ४, अन्यत्व ५, अशुचि ६, आश्रव ७, संवर ८, निर्ज्जरा ९, लोकस्वरूप १०, बोधिदुर्लभ ११ अने धर्म १२ ए) बार भावना; ए प्रमाणे सूरि--आचार्यना छत्रीश गुण छे. ॥ २७ ॥

साधु मुनिराजना सत्तावीश गुण.

छव्वय छकायरक्खा,
पंचिंदियलोहनिग्गहो खंती ॥
भावविसुद्धि पडिले-
हणा य करणे विसुद्धी य ॥ २८ ॥
संजमजोए जुत्तो,
अकुसलमणवयणकायसंरोहो ॥
सीय इपीडसहणं,
मरणं उवसग्गसहणं च ॥ २९ ॥

(प्राणातिपात १, मृषावाद २, अदत्तादान ३, मैथुन ४, परिग्रह ५ अने रात्रिभोजन ६, ए छने

त्याग करवा रूप) छ व्रत, (पृथ्वी १, अप २, तेउ ३, वायु ४, वनस्पति ५ अने त्रसकाय ६ रूप जे) छकायनी रक्षा, (स्पर्शेंद्रिय १, रसनेंद्रिय २, घ्राणेंद्रिय ३, चक्षुरेंद्रिय ४ अने श्रोत्रेंद्रिय ५ ए) पांच इंद्रियो अने लोभनो निग्रह १८, क्षमा १९, भावनी विशुद्धि २०, पडिलेहण करवामां विशुद्धि २१, संयम योगे युक्त २२, अकुशल मन २३, वचन २४, कायानो संरोध २५, शीतादि पीडानुं सहन २६ अने मरणनो उपसर्ग सहन करवो ते २७, आ प्रमाणे सत्तावीश गुण साधुना थाय छे.

सत्तावीसगुणेहिं,
एएहिं जो विभूसिओ साहू ॥
तं पण मिज्जइ भत्ति-
भरेणहियएण रे जीव ॥ ३० ॥

पूर्वोक्त सत्तावीश गुणे करीने जे साधु विभूषित होय, तेने रे जीव ! तुं बहु भक्तिवाला हृदये करीने

नमस्कार कर. ॥ ३० ॥

श्रावकना एकवीश गुण.

धम्मरयणस्स जुग्गो,
अक्खुद्दो रूववं पगइसोमो ॥
लोगप्पिओ अकूरो,
भीरू असढो सुदक्खिन्नो ॥ ३१ ॥
लज्जालू अ दयालू,
मज्झत्थो सोमदिट्ठि गुणरागी ॥
सक्कह सुपक्खजुत्तो,
सुदीहदंसी विसेसन्नू ॥ ३२ ॥
वुड्ढाणूगो विणिओ,
कयन्नुओ परहिअत्थकारी अ ॥
तह चेव लद्धलक्खो,
इगवीसगुणो हवइ सड्ढो ॥ ३३ ॥

धर्मरत्नने योग्य एवा श्रावक एकवीश गुणे करीने युक्त होय. ते एकवीश गुण आ प्रमाणे–अक्षुद्र १,

रूपवंत २, प्रकृतिए सौम्य ३, लोकप्रिय ४, अक्रूर ५, भीरू ६, अशठ ७, सुदाक्षिण्यवान् ८, लज्जालु ९, दयालु १०, मध्यस्थ सोमदृष्टि ११, गुणरागी १२, सत्कथ, १३ सुपक्षयुक्त १४, सुदीर्घदर्शी १५, विशेषज्ञ १६, वृद्धानुग १७, विनीत १८, कृतज्ञ १९, परहितार्थकारी २०, तेम ज लब्धलक्ष २१. ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

जिनागमनुं उत्कर्षपणुं.

(अनुष्टुब्वृत्तम्)

कत्थ अम्हारिसा पाणी,
दूसमा दोसदूसिआ ॥
हा अणाहा कहं हुंता,
न हुंतो जइ जिणागमो ॥ ३४ ॥

दूषम कालना दोषे करीने दूषित एवा अमारा जेवा प्राणीओ क्यां? अर्थात् शुं गणतीमां? हा! खेद थाय छे के, जो जिनागम न होत तो अनाथ

एवा जे अमे तेनुं शुं थात ? अर्थात् स्वामी रहित ज अमे तेने जिनागम होवाथी ज आ पंचमकालमां आधार छे. ॥ ३४ ॥

आगमनो आदर करवामां रहेल तात्पर्य.

आगमं आयरंतेणं,
अत्तणो हियकंखिणो ॥
तित्थनाहो गुरू धम्मो,
सव्वे ते बहुमन्निया ॥ ३५ ॥

आगमने अर्थात् आगमोक्त रहस्यने आचरता सता आत्माना हितइच्छक पुरुषने तीर्थनाथ अरिहंत भगवंत, सद्गुरु अने केवली प्रज्ञापित धर्म ए सर्व बहु माननीय—सत्यपणे अंगीकार करवा योग्य थाय छे. ३५

केवा संघने संघ न कहेवो ?

(आर्यावृत्तम्.)

सुहसीलाओ सच्छं-
दचारिणो वेरिणो सिवपहस्स ॥

आणाभट्ठाओ बहु-
जणाओ मा भणह संघुत्ति ॥ ३६ ॥

(गौतमस्वामी प्रत्ये श्री वीर भगवंत कहे छे.) सुखशीलिया अर्थात् सुखने विषे स्थापन करयो छे आत्मा जेणे एवा अने स्वच्छंदचारी अर्थात् स्वेच्छा मुजब वर्त्तवावाला तथा शिवमार्ग जे मोक्षमार्ग तेना वैरी तेम ज जिनाज्ञा थकी भ्रष्ट एवा घणा लोको होय, तो पण तेने संघ एम न कहीश. ॥ ३६ ॥

केवा संघने संघ कहेवो ?

एगो साहू एगा,
य साहुणी सावओवि सड्ढी वा ॥
आणाजुत्तो संघो,
सेसो पुण अट्ठीसंघाओ ॥ ३७ ॥

एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक अने एक श्राविका (आ चार भेदे करीने संघ कहेवाय छे,) तेमां जे जिनाज्ञाए करीने युक्त होय, तेने संघ कहे

वो. बाकीनाने हाडकानो संघ--समूह कहेवो.॥३७॥

संघनुं लक्षण.

निम्मलनाणपहाणो,
[illegible]सणजुत्तो चरित्त[illegible]णवंतो ॥
तित्थयराण य पुज्जो,
वुच्चइ एयारिसो संघो ॥ ३८ ॥

निर्मळ ज्ञाननी छे प्रधानता जेने विषे अर्थात् निर्मळ ज्ञानवान, दर्शन जे सम्यक्त्व तेणे करीने युक्त अने चारित्रना गुणे करीने अलंकृत एवो जे संघ छे, ते तीर्थंकर भगवंतने पण पूज्य छे; तेथी एवा गुणवानने संघ कहीए. ॥ ३८ ॥

जिनाज्ञानुं मुख्यपणुं.

जह तुसखंडण मयमं-
डणाइ रुण्णाइ सुन्नर[illegible]मि ॥
विहलाई तह जाणसु,
आणारहियं अणुट्ठाणं ॥ ३९ ॥

जेम फोतरानुं खांडवुं, मडदाने शणगारवुं अने शून्य अरण्यमां रोवुं निष्फल छे, तेम आज्ञा रहित अनुष्ठान पण निष्फल जाणवुं. ॥ ३९ ॥

आणाइ तवो आणा-
इ संजमो तह य दाणमाणाए ॥
आणारहिओ धम्मो,
पलाल पुल्लुव्व पडिहाई ॥ ४० ॥

आज्ञाए ज तप, आज्ञाए ज चारित्र अने आज्ञाए ज दान करवुं; केम के, आज्ञा रहित जे धर्म छे, ते तृण समूहनी पेठे शोभे छे. अर्थात् आज्ञा रहित धर्म शोभतो नथी. ॥ ४० ॥

आज्ञा रहितपणे करेली धर्मक्रिया निरर्थक छे.

आणाखंडणकारी,
जइवि तिकालं महाविभूईए ॥
पूएइ वीयरायं,
सव्वंपि निरत्थयं तस्स ॥ ४१ ॥

श्री वीतरागनी आज्ञानुं खंडन करवावालो पुरुष जो के, म्होटी संपदावडे करीने त्रणे काल वीतराग देवनी पूजा करे, तो पण ते सर्वे क्रिया जेनी पूजा करवी छे, तेनी आज्ञाथी बहार होवाथी निरर्थक छे.

रन्नो आणाभंगे,
इक्कुच्चि य होइ निग्गहो लोए ॥
सव्वन्नुआणभंगे,
अणंतसो निग्गहो होई ॥ ४२ ॥

आ लोकने विषे राजानी आज्ञानो भंग करवाथी एक ज वार निग्रह--दंड थाय छे, परंतु सर्वज्ञनी आ नो भंग करे सते अनंतीवार निग्रह--बहु जन्मोने विषे छेदन, भेदन, जन्म, जरा, मरण, शोक अने मोहादि रूप दंडने पामे छे. ॥ ४२ ॥

अविधिए अने विधिए करेला धर्ममां अंतरपणुं.

जह भोयणमविहिकयं,
विणास[illegible] [illegible] जियावेई ॥

तह अविहिकओ धम्मो,

देइ भवं विहिकओ मुख्खं ॥ ४३ ॥

जेम अविधिये करेलुं भोजन शरीरनो विनाश करे छे अने विधिये करेलुं भोजन जीवाडे छे, तेम अविधिये करेलो धर्म संसारने वधारे छे अने विधिए करेलो धर्म मोक्षने आपे छे. ॥ ४३ ॥

द्रव्यस्तव अने भावस्तवनुं अंतरपणुं.

मेरुस्स सरिसवस्स य,

जित्तियमित्तं तु अंतरं होई ॥

दव्वत्थयभावत्थय,

अंतरमिह तित्तियं नेयं ॥ ४४ ॥

मेरुपर्वत अने सरशवमां जेटलुं अंतर छे, तेटलुं अंतर अहिं द्रव्यस्तव अने भावस्तवमां जाणवुं. ॥ ४४ ॥

द्रव्यस्तव अने भावस्तवनुं उत्कृष्ट फल.

उक्कोसं दव्वत्थयं,

आराहिय जाइ अच्चुयं जाव ॥

भावत्थएण पावइ,
अंतमुहुत्तेण निव्वाणं ॥ ४५ ॥

द्रव्यस्तवनो आराधक उत्कृष्टो अच्युत नामे बारमा देवलोक सूधी जाय अने भावस्तवे करीने अंतर्मुहूर्त्तमां निवार्ण प्रत्ये पामे. ॥ ४५ ॥

केवा गच्छने त्याग करवो ?

जत्थ य मुणिणो कयवि-
कयाइ कुव्वंति निच्चपप्भट्ठा ॥
तं गच्छं गुणसायर,
विसंव दूरं परिहरिज्जा ॥ ४६ ॥

जे गच्छमां नित्य भ्रष्टाचारी एवा मुनियो क्रय विक्रयादि करे छे, ते गच्छने हे गुणसागर ! विषनी पेठे दूर त्यजी दे. ॥ ४६ ॥

जत्थ य अज्जालद्धं,
पडिग्गहमाइय विविहमुवगरणं ॥
पडिभुंजइ साहूहिं,

तं गोयम केरिसं गच्छं ॥ ४७ ॥

जे गच्छमां साध्वीए लावेलां वस्त्र पात्रादि उपकरणो साधुओ भोगवे छे, हे गौतम! ते केवो गच्छ? अर्थात् कांइ नही एवो जाणवो. ॥ ४७ ॥

जहिं नत्थि सारणा वा-
रणा य पडिचोयणा य गच्छंमि ॥
सो अ अगच्छो गच्छो,
संजमकामीहि मुत्तव्वो ॥ ४८ ॥

जे गच्छमां सारणा, वारणा, च शब्दथी चोयणा अने पडिचोयणा थती नथी, ते गच्छ अगच्छ तुल्य छे. तेथी संयमना वांछक मुनियोए ते गच्छने तजी देवो. ॥ ४८ ॥

गच्छनी उपेक्षा करवानुं अने पालवानुं फल.

गच्छं तु उवेहंतो,
कुव्वइ दीहंभवे विहीएओ ॥
पालंते पुण सिज्झइ,

तइअ भवे भगवई सिद्धं ॥ ४९ ॥

गच्छनी उपेक्षा करे तो दीर्घ--लांबा भव करे अने विधिपूर्वक पालन करे तो त्रीजे भवे सिद्धिपद पामे. ए प्रमाणे श्री भगवतिसूत्रमां सिद्धपणे कह्युं छे. ४९

जत्थ हिरन्नसुवन्नं,
हत्थेण पराणगंपि नो छिप्पे ॥
कारणसमप्पियंपि हु,
गोयम गच्छं तयं भणियं ॥ ५० ॥

जे गच्छमां मुनियो कारणथी आपे सते पण पारका एवा हिरण्य अने सुवर्णने हस्त स्पर्श पण करता नथी, तेवा गच्छने गच्छ कह्यो छे. ॥ ५० ॥

पुढविदग अगणिमारुअ--
वणस्सइ तह तसाण विविहाणं ॥
मरणंतेवि न पीडा,
कीरइ मणसा तयं गच्छं ॥ ५१ ॥

पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति अने विविध

प्रकारना त्रस जीवोने मरणांते पण मनवडे करीने पण पीडा करता नथी, एवा गच्छने गच्छ कहेवो. ५१

मूलगुणेहिं विमुक्कं,
बहुगुणकलियंपि लद्धिसंपन्नं ॥
उत्तमकुलेवि जायं,
निद्धाडिज्जइ तयं गच्छं ॥ ५२ ॥

कोइ पण मुनि बीजा बहु गुणे अलंकृत होय, लब्धिसंपन्न होय अने उत्तम कुलमां उत्पन्न थएला होय, तो पण मूळ गुणे करीने विमुक्त होय; तो तेने काढी मूके छे एवो गच्छ ते ज गच्छ छे. ॥ ५२ ॥

जत्थ य उसहादीणं,
तित्थयराणं सुरिंदमहियाणं ॥
कम्मट्ठविमुक्काणं,
आणं न खलिज्जइ स गच्छो ॥ ५३ ॥

जे गच्छमां अष्टकर्म विमुक्त अने सुरेंद्र पूजित श्री ऋषभादिक तीर्थंकरोनी आणा स्खलना पामती नथी,

ते गच्छने गच्छ जाणवो. ॥ ५३ ॥

जत्थ य अज्जाहिं समं,

थेराावि न उल्लवंति गयदसणा ॥

न य झायंतित्थीणं,

अंगोवंगाइं तं गच्छं ॥ ५४ ॥

जे गच्छने विषे जेना दांत पण गएला छे एवा स्थविर पण, साध्वीनी साथे बोलता नथी अने स्त्रीनां अंगोपांगने निरखता नथी, तेने गच्छ कहीए.

वज्जेइ अप्पमत्ता,

अज्जासंसग्गि अग्गिविससरिसी ॥

अज्जाणुचरो साहू,

लहइ अकित्ति खु अचिरेण ॥ ५५ ॥

अप्रमत्त मुनि महाराजाए आर्यानो, अग्नि अने विष सदृश जे संसर्ग छे, ते वर्जवो. आर्यानो अनुचर साधु निश्चे स्वल्पकालमां अपकीर्त्ति पामे छे. ५५

शीलनी पुष्टि.

जो देइ कणयकोडिं,
अहवा कारेइ कणयजिणभवणं ॥
तस्स न तत्तिय पुन्नं,
जत्तिय बंभव्वए धरिए ॥ ५६ ॥

जो कोई प्राणी सुवर्णनी कोटि अर्थात् क्रोडो रुपिયानी किम्मतनुं सुवर्ण याचकोने आपे, अथवा कंचननुं जिनभवन करावे, तो पण तेने तेटलुं पुण्य न थाय के, जेटलुं ब्रह्मव्रत धारण करनारने थाय छे.

सीलं कुलआहरणं,
सीलं रूवं च उत्तमं होई ॥
सीलं चिय पंडित्तं,
सीलं चिय निरुवमं धम्मं ॥ ५७ ॥

शील, कुलना आभरण समान छे, शील, ते ज उत्तम रूप छे, शील ते ज पांडित्य छे अने शील ते ज निरुपम धर्म छे. ॥ ५७ ॥

कुमित्रनो संग वर्जवानो उपदेश.

(अनुष्टुब्वृत्तम्.)

वरं वाहो वरं मच्चू,
वरं दारिद्दसंगमो ॥
वरं अ ण्णवासो अ,
मा कुमित्ताण संगमो ॥ ५८ ॥

व्याधि, मृत्यु अने दारिद्रनो संगम तेम ज अरण्य मां वास ए सघलुं श्रेष्ठ छे, परंतु कुमित्रनो संगम श्रेष्ट नही. ॥ ५८ ॥

अगीयत्थ कुसीलेहिं,
संगं तिवि ेण वोसिरे ॥
मुक्खमग्गंमिमे विग्घं,
पहंमि तेणगे जहा ॥ ५९ ॥

अगीतार्थ अने कुशीलियानो संग त्रिविधे करीने तजी देवो. केम के, पंथमां चोरनी पे ठे तेओ मोक्ष मार्गमां विघ्न करनारा छे. ॥ ५९ ॥

अगीतार्थ अने कुशीलियाने नजरे पण न जोवा.

(आर्यावृत्तम्.)

उम्मग्गदेसणाए,

चरणं नासंति जिणवरिंदाणं ॥

वावन्नदंसणा खलु,

न हु लब्भा तारिसं दट्टुं ॥ ६० ॥

उन्मार्गनी देशना देवाथी श्री जिनेश्वर भगवंतनुं कहेलुं चारित्र नाश पामे छे, माटे निश्चे नाश पाम्युं छे समकित जेनुं एवा तेओनुं देखवुं पण न थाओ.

उसन्नानी अनुवृत्तिए न चालवा माटे उपदेश कहे छे.

परिवारपूअहेऊ,

उसन्नाणं च आणुवित्तीए ॥

चरणकरणनिगूहई,

तं दुलहं बोहिअं जाणं ॥ ६१ ॥

परिवारनी पूजाना हेतुए उसन्नानी अनुवृत्तिए चाले अने चरणशित्तरी करणशित्तरीने गोपवे, तेने समकित दुर्लभ जाणवुं. ॥ ६१ ॥

उसन्नानी निश्राए चालवाथी सारा मुनिमां पण दोष प्राप्ति थाय छे त्यां दृष्टांत कहे छे.

अंबस्स य निंबस्स य,
दुण्हंपि समागयाइं मूलाइं ॥
संसग्गेण विणट्ठो,
अंबो निंबत्तणं पत्तो ॥ ६२ ॥

आंबानां अने लींबडानां ए बन्नेनां मूल एकठां थयां, तेमां लींबडाना संसर्गथी आंबो विनष्ट थयो अने लींबडापणाने पाम्यो. ॥ ६२ ॥

पक्कणकुले वसंतो,
सउणीपारोवि गरहिओ होई ॥
इय दंसणा सुविहिआ,
मज्झि वसंता कुसीलाणं ॥ ६३ ॥

चंडालना कुलने विषे वसतो एवो शकुन पारक (ज्योतिषी) पण निंदनीक थाय छे. तेम ज सुविहित एवा मुनि पण कुशीलीआमां वसता थका नि

दनीक थाय छे. ॥ ६३ ॥

उत्तमनी संगतथी थतो लाभ.

उत्तमजणसंसग्गी,
सील दरिदंपि कुणई सीलड्ढं ॥
जह मेरुगिरिवि लग्गं,
तणंपि कणगत्तणमुवेई ॥ ६४ ॥

उत्तम जननी संगाति शील रहित पुरुषने पण शील युक्त करे छे. जेम मेरुपर्वत साथे लागेलां तृण पण सुवर्णपणाने पामे छे. ॥ ६४ ॥

मिथ्यात्व महा दोषने उत्पन्न करनारुं छे.

नवि तं करेसि अग्गी,
नेव विसं नेव किन्हसप्पो अ ॥
जं कुणइ महादोसं,
तिव्वं जीवस्स मिच्छत्तं ॥ ६५ ॥

तीव्र मिथ्यात्व जीवनी साथे जेटलो महान् द्वेष करे छे, तेटलो द्वेष नथी करतो अग्नि, नथी करतुं विष

अने नथी करतो कालो सर्प. ॥ ६५ ॥

मिथ्यात्व छते बीजुं सर्व निरर्थक छे.

कट्ठं करेसि अप्पं,
दमेसि अत्थं चयंसि धम्मत्थं ॥
इक्क न चयंसि मिच्छ-
त्त विसलवं जेण बुडिहासि ॥ ६६ ॥

कष्ट करे छे, आत्माने दमे छे अने धर्मने अर्थे द्रव्यने तजे छे, पण जो विषलव तुल्य मिथ्यात्वने तजतो नथी, तो ते सर्व निरर्थक छे; कारण के, मिथ्यात्वे करीने संसार समुद्रने विषे बूडे छे. ॥ ६६ ॥

यत्नानी प्राधान्यता.

जयणा य धम्मजणणी
जयणा धम्मस्स पालणी चेव ॥
तववुड्डिकरी जयणा,
एगंतसुहावहा जयणा ॥ ६७ ॥

जयणा धर्मनी माता छे, जयणा धर्मनुं पालन

करनारी छे, जयणा तपनी वृद्धि करनारी छे अने एकांत सुखने आपनारी पण जयणा छे. ॥६७॥

कषायनुं फल.

जं अज्जिअं चरित्तं,
देसूणाए अ पुव्वकोडीए ॥
तं पुण कसायमेत्तो,
हारेइ नरो मुहुत्तेणं ॥ ६८ ॥

देशे उणा पूर्वक्रोड वर्ष सुधी चारित्र पालवाथी जे चारित्र गुण उपार्जन कर्यो होय, तेने एक मुहूर्त मात्र कषाय करवाथी प्राणी हारी जायछे. ॥६८॥

चारे कषायना दोषोनुं जूदुं जूदु वर्णन करे छे.

(अनुष्टुब्वृत्तम्)

कोहो पीईं पणासेई,
माणो विणयनासणो ॥
माया मित्ताणि नासेई,
लोहो सव्वविणासणो ॥ ६९ ॥

क्रोध प्रीतिनो नाश करे छे, मान विनयनो नाश करे छे, माया मित्राईनो नाश करे छे अने लोभ सर्वनो विनाशी छे. ॥ ६९ ॥

क्षमाना गुणो.

(आर्यावृत्तम्.)

खंती सुहाण मूलं,
मूलं धम्मस्स उत्तमा खंती ॥
हरइ महाविज्जा इव,
खंती दुरियाइं सव्वाइं ॥ ७० ॥

क्षमा सुखनुं मूल छे, धर्मनुं मूल पण उत्तम क्षमा छे. महा विद्यानी पेठे क्षमा सर्व दुरितने हरेछे. ॥ ७० ॥

पापश्रमणनुं लक्षण.

(अनुष्टुब्वृत्तम्.)

सयं गेहं परिच्चज्ज,
परगेहं च वावडे ॥
निमित्तेण य ववहरई,

पावसमणुत्ति वुच्चई ॥ ७१ ॥

जे पोतानुं घर तजी दईने परघरने जोया करे छे, (परने विषे ममत्व धारण करे छे अने निमित्तवडे व्यापार करे छे तेने पापश्रमण कहीए. ॥ ७१ ॥

दुद्ध दही विगइओ,
आहारेई अभिरूक्खणं ॥
न करेइ तवोकम्मं,
पावसमणुत्ति वुच्चई ॥ ७२ ॥

दूध, दहिं अने घृतादिक विगय वारंवार वापरे अने तपकर्म न करे, तेने पापश्रमण कहीए. ॥७२॥

पांच प्रमाद सेववानुं फल.

(आर्यावृत्तम्.)

मज्जं विसय कसाया,
निद्दा विकहा य पंचमी भणिया ॥
ए ए पंच पमाया,
जीवं पाडंति संसारे ॥ ७३ ॥

मद, विषय, कषाय, निद्रा अने पांचमी विकथा ए कहेला पांच प्रमादो जीवने संसारने विषे पाडे छे.

निद्राथी थती हानी.

जइ चउदसपुव्वधरो,
वसई निगोएसुऽणंतयं कालं ॥
निद्दापमायवसओ,
ता होहिसि कह तुमं जीव ॥ ७४ ॥

ज्यारे निद्रा रूप प्रमादना वश थकी चौद पूर्वधर निगोदने विषे अनंतकाल सुधी रहे छे, तो हे जीव ! त्हारुं शुं थशे? अर्थात् तुं जो निद्रा प्रमादने वश पड्यो तो कदि पण उंचो आवी शकीश नही.

ज्ञान अने क्रियानी आवश्यकता.

(अनुष्टुब्वृत्तम्.)

हयं नाणं कियाहीणं,
हया अन्नाणओ किया ॥
पासंतो पंगुलो दड्ढो,

धावमाणो अ अंधओ ॥ ७८ ॥

क्रिया हीन जे ज्ञान ते हणाएलुं छे अने अज्ञान पणाथी क्रिया हणाएली छे. अर्थात् ज्ञानवडे शुभा शुभ भाव कृत्याकृत्य जाणे छे, परंतु जो शुभ क्रिया करतो नथी तो तेथी कांई पण सिद्धि थती नथी. इहां दृष्टांत कहे छे. पांगलो देखतो थको दाझ्यो अने आंधलो दोडीने दाझ्यो. ॥ ७९ ॥

(उपजातिवृत्तम्.)

संजोग सिद्धि अ फलं वयंति,
न हु एगचक्केण रहो पयाई ॥
अंधो य पंगोय वणए समिच्चा,
ते संपणठा नगरं पविठ्ठा ॥ ७६ ॥

पंडित पुरुषो ज्ञान अने क्रियाना संयोगनी सिद्धि वडे ज मुक्ति रूप फलनी प्राप्ति कहे छे. कारण के, एके पैडे करीने रथ चालतो नथी, पण बे पैडांव डे ज चाली शके छे. इहां दृष्टांत कहे छे. आंधलो

अने पांगलो वनने विषे एकठा मलीने त्यांथी ते नाठा अने ते नगरमां पेसी गया. ॥ ७६ ॥

चारित्रनी प्राधान्यता.

(आर्यावृत्तम्.)

सुबहुंपि सुअमहीअं,
किं काही चरणविप्पहीणस्स ॥
अंधस्स जह पलित्ता,
दीवसयसहस्सकोडीओ ॥ ७७ ॥

अत्यंत ज्ञानाभ्यास करयो होय तो पण चारित्र रहितने ज्ञान शुं करे छे? अर्थात् कांइ पण अवबोध करी शकतुं नथी. जेम लाखो क्रोडो प्रज्वालित करेला दीपको अंधने कांई पण बोध करी शकता नथी.

अप्पंपि सुअमहीअं,
पयासगं होइ चरणजुत्तस्स ॥
इक्कोवि जह पईवो,
सचक्खुअस्सा पयासेई ॥ ७८ ॥

चारित्र युक्त पुरुषनो अल्पगुण श्रुताभ्यास प्रकाशने करनार थाय छे. जेम चक्षुवालाने एक दीपक पण प्रकाशने करे छे तेम. ॥ ७८ ॥

श्रावकनी अगीयार पडिमा.

दंसण वय सामाइय,
पोसह पडिमा अबंभ सच्चित्ते ॥
आरंभ पेस उद्दि-
ठ वज्जए समणभूए अ ॥ ७९ ॥

१ समकित प्रतिमा, २ व्रत प्रतिमा, ३ सामायिक प्रतिमा, ४ पौषध प्रतिमा, ५ कायोत्सर्ग प्रतिमा, ६ अब्रह्मवर्जक प्रतिमा, ७ सचित्त वर्जक प्रतिमा, ८ आरंभवर्जक प्रतिमा, ९ प्रेष्यवर्जक प्रतिमा, १० उद्दिष्ट वर्जक प्रतिमा अने ११ मी श्रमणभूत प्रतिमा. ॥ ७९ ॥

श्रावक प्रतिदिवस शुं सांभले ?

संपत्तदंसणाई,

पईदियह जइजणाओ निसुणेई ॥
सामायारिं परमं,
जो खलु तं सावगं बिंति ॥ ८० ॥

संप्राप्त कर्युं छे समकित जेणे अर्थात् संपूर्ण थई छे दर्शनादि प्रतिमा जेमने एवो श्रावक प्रति दिवस मुनिजननी पासे परम उत्कृष्टि एवी सामाचारीने सांभले. निश्चे ते पुरुषने तीर्थंकर भगवंत श्रावक कहे छे.

(उपजातिवृत्तम्.)

जहा खरो चंदणभारवाही,
भारस्सभागी न हु चंदणस्स ॥
एवं खु नाणी चरणेण हीणो,
भारस्सभागी न हु सुग्गई ॥ ८१ ॥

चंदनना काष्ट समूहने उपाडनार गर्दभ जेम भार मात्रने उपाडनार छे, पण ते चंदनना सुगंधने भोगवतो नथी; तेम चारित्र धर्मे करीने हीन–रहित एवो ज्ञानी निश्चे ज्ञान मात्रनो भागी छे, परंतु सद्‌ग

तिनो भाजन थतो नथी. ॥ ८२ ॥

स्त्रीसंगमां रहेला दोषनुं वर्णन.

(अनुष्टुब्वृत्तम्.

तहिं पंचिंदि आ जीवा,
इत्थीजोणीनिवासिणो ॥
मणुआणं नवलक्खा,
सव्वे पासेइ केवली ॥ ८२ ॥

ते स्त्रीनी योनिना निवासी एवा नवलाख पंचेंद्रिय मनुष्यो छे, ते सर्वे केवलज्ञानी जोई शके छे. ॥८२॥

(आर्यावृत्तम्.)

इत्थीणं जोणीसु,
हवंति बेइंदिया य जे जीवा ॥
इक्को य दुन्नि तिन्निवि,
लक्खपहुत्तं तु उक्कोसं ॥ ८३ ॥

स्त्रीनी योनिने विषे बेइंद्रिय जीवो जे छे, तेनी संख्या शास्त्रकारे एक, बे, त्रण अथवा उत्कृष्ट लाख

पृथक्त्व कहेली छे. ॥ ८३ ॥

पुरिसेण सहगयाए,
तेसिं जीवाण होइ उद्दवणं ॥
वेणुअ दिट्ठंतेणं,
तत्ताइ सिलागनाएणं ॥ ८४ ॥

तपावेली शलाका दाखल करेली भूंगळीना दृष्टांते करीने पुरुषनी संगाथे स्त्रीनो योग थवाथी ते पूर्वोक्त जीवोनो नाश थाय छे. ॥ ८४ ॥

इत्थीण जोणिमज्झे,
गब्भगयाइं हवंति जे जीवा ॥
उप्पज्जंति चयंति य,
समुच्छिमा असंखया भणिया ॥ ८५ ॥

स्त्रीनी योनिने विषे गर्भगत जे जीवो छे, ते उपजे छे अने चवे छे तथा समूर्च्छिम जीवो पण असंख्य कह्या छे. ॥ ८५ ॥

मेहुणसन्नारूढो,

नवलरूख हणेइ सुहुम जीवाणं ॥
तित्थयरेणं भणियं,
सद्दहियव्वं पयत्तेणं ॥ ८६ ॥

मैथुनसंज्ञाने विषे आरूढ थएलो मनुष्य नवलाख सूक्ष्म जीवोने हणे छे. ए प्रमाणे तीर्थंकरे कह्युं छे. तेवी रीते ते प्रयत्ने करीने सद्दहवुं. ॥ ८६ ॥

(उपजाति वृत्तम्.

असंख इत्थी नर मेहुणाओ,
मुच्छंति पंचिंदिय माणुसाओ ॥
निसेस अंगाण विभत्ति अंगे,
भणई जिणो पन्नवणा उवंगे ॥ ८७ ॥

स्त्री अने पुरुषना मैथुनथी असंख्याता समूर्छिम पंचेंद्रिय मनुष्य उत्पन्न थाय छे. ए प्रमाणे सर्व अंगोने विषे जीवाजीवादिकना विवरणवडे मनोहर एवा पन्नवणा उपांगने विषे श्रीजिनेश्वर भगवंते कह्युंछे. ८७

(अनुष्टुब् वृत्तम्.)

मज्जे महुंमि मंसंमि,
नवणीयंमि चउत्थए ॥
उप्पज्जंति असंखा,
तव्वण्णा तत्थ जंतुणो ॥ ८८ ॥

मदिरामां, मधमां, मांसमां अने चोथा माखणमां तेज वर्ण (रंग)ना असंख्य जंतुओ उत्पन्न थायछे। ८८।

(आर्यावृत्तम्)

आमासु अ पक्कासु अ,
विपच्चमाणासु मंसपेसीसु ॥
सययं च्चिय उववाओ,
भणिओ अ निगोअ जीवाणं ॥ ८९ ॥

काचा मांसमां, पाका मांसमां अने पचवाती एवी मांसनी पेसीमां सदा निरंतर निगोद जीवोनो उपपात कहेलो छे. ॥ ८९ ॥

व्रत भंग करवानुं फल.

आजम्मं जं पावं,

बंधइ मिच्छत्त संजुओ कोई ॥
वयभंगं काउमणो,
बंधइ तं चेव अट्ठगुणं ॥ ९० ॥

मिथ्यात्व संयुक्त कोई प्राणी जन्म पर्यंत जेटलुं पाप बांधे, ते करतां आठगणुं पाप व्रत भंग करवानुं मन करनार बांधे. ॥ ९० ॥

(अनुष्टुब्वृत्तम्.)

सयसहस्साण नारीणं,
पिट्टं फाडेइ निग्घिणो ॥
सत्तट्ठमासिए गब्भे,
तप्फडंते निकत्तइ ॥ ९१ ॥

(आर्यावृत्तम्.)

तं तस्स जत्तियं पा-
वं तं नवगुणिय मेलियं हुज्जा ॥
एगित्थि य जोगेणं,
साहु बंधिज्ज मेहुणओ ॥ ९२ ॥

एक लाख गर्भवंती स्त्रीओनां निर्दयपणे पेट चीरे अने तेमांथी बहार आवेला सात आठ मासना तरफडता गर्भने मारी नांखे, ते प्राणीने जेटलुं पाप लागे, तेने नवगुणुं करीए तेटलुं पाप एक स्त्रीना योगे करीने मैथुन सेवन करवाथी साधु बांधे.

कोनी समीपे समकित ग्रहणादि करवुं ?

अखंडीयचारित्तो,
वयधारी जो व होइ गीहत्थो ॥
तस्स सगासे दंसण,
वयगहणं सोहिकरणं च ॥ ९३ ॥

अखंड चारित्रवंत मुनि अथवा व्रतधारी गृहस्थ होय, तेनी समीपे समकित तथा व्रत ग्रहण करवुं अने आलोयण लेवुं. ॥ ९३ ॥

स्थावर जीवोमां रहेला जीवो.

अद्दामलय पमाणे,
पुढवीकाए हवंति जे जीवा ॥

तं पारेवय मित्ता,

जंबूदीवे न मायंति ॥ ९४ ॥

लीला आमला प्रमाणे पृथ्विकायने विषे जे जीवो रहेला छे, ते दरेकनुं शरीर पारेवा प्रमाणे करीए तो जंबूद्वीपने विषे समाय नही. ॥ ९४ ॥

एगंमि उदगबिंदुमि,

जे जीवा जिणवरेहिं पन्नत्ता ॥

ते जइ सरिसवामित्ता,

जंबूदीवे न मायंति ॥ ९५ ॥

एक पाणीना बिंदुमां जे जीवो जिनेश्वरे कह्या छे, तेने सरशव मात्र शरीरवाला करीए तो जंबूद्वीपमां समाय नही. ॥ ९५ ॥

बंटतंदुलमित्ता,

तेउकाए हवंति जे जीवा ॥

ते जइ खसखसामित्ता,

जंबूदीवे न मायंति ॥ ९६ ॥

बंटी तंदूल मात्र तेउकायने विषे जेटला जीवो छे, ते जो खशखश प्रमाण शरीरवाला करीए तो जं बूद्वीपमां समाय नही. ॥ ९६ ॥

जे लिंबपत्तमित्ता,
वाऊकाए हवंति जे जीवा ॥
तं मत्थयलिक्खमित्ता,
जंबूदीवे न मायंति ॥ ९७ ॥

लींबडाना पांदडा जेटली जग्या रोकनारा वायु कायमां जे जीवो छे, ते दरेकने माथानी लीख मात्र शरीरवाला करीए तो जंबूद्वीपमां समाय नही. ।९७।

पासत्थाना संगमां रहेनारा मुनि अवंदनीक छे.

असुइठाणे पडिआ,
चंपकमाल न कीरइ सीसे ॥
पासत्थाई ठाणे,
सुवट्टमाणो तह अपुज्जे ॥ ९८ ॥

अशुचि स्थानकने विषे पडेली चंपाना पुष्पनी

माला जेम मस्तक उपर धारण करातो नथी, तेम पासत्थादिक स्थानकने विषे वर्त्तता—रहेता एवा मुनि पण अपूज्य छे. पूजवा योग्य नथी. ॥ ९८ ॥

छठ्ठठम दसम दुवा-
लसेहिं मासद्धमासखमणेहिं ॥
इत्तोउ अणेगगुणा,
सोहा जिमियस्स नाणिस्स ॥ ९९ ॥

छठ, अठम, दशम, दुवालस, अर्ध मासखमण अने मासखमण करवे करीने जे शोभा छे, ते करतां अनेक गुणी शोभा (दररोज) जमता एवा ज्ञानीनी छे.

जं अन्नाणी कम्मं,
खवेइ बहुआइं वासकोडीहिं ॥
तन्नाणी तिहिं गुत्तो,
खवेइ उस्सासमित्तेणं ॥ १०० ॥

बहुक्रोड वर्षोए करीने अज्ञानी जेटलां कर्मने खपावे, तेटलां कर्मने ज्ञानी त्रण गुप्ति युक्त वर्त्तता सता

एक श्वासोश्वास मात्रे करीने खपावे. ॥ १०० ॥

देवद्रव्यना रक्षणनुं फल.

जिणपवयणवुड्डिकरं,
पभावगं नाणदंसणगुणाणं ॥
रक्खंतो जिणदव्वं,
तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ १०१ ॥

जिन प्रवचननी वृद्धिना करनार अने ज्ञान दर्शन गुणना प्रभावक तथा जिनद्रव्यनुं रक्षण करनार जीव तीर्थंकरपणाने प्राप्त करे. ॥ १०१ ॥

जिणपवयण वुड्डिकरं,
पभावगं नाणदंसणगुणाणं ॥
भक्खंतो जिणद[illegible],
अणंतसंसारिओ होई ॥ १०२ ॥

जिन प्रवचननी वृद्धि करनार अने ज्ञान दर्शन गुणना प्रभावक पण जिनद्रव्यनुं भक्षण करता सता अनंतसंसारी थाय. ॥ १०२ ॥

(अनुष्टुब्वृत्तम्.)

भक्खेइ जो उवेक्खेइ,
जिणदव्वं तु सावओ ॥
पन्नाहीणो भवे जीवो,
लिप्पइ पावकम्मुणा ॥ १०३ ॥

जे श्रावक जिनद्रव्यनुं भक्षण करे, अथवा उपेक्षा करे, तो ते जीव प्रज्ञा (बुद्धि) हीन थाय अने पापकर्मे लेपाय. ॥ १०३ ॥

चार म्होटां अकार्य वर्जवां.

(आर्यावृत्तम्.)

चेइअदव्वविणासे,
रिसिघाए पवयणस्सउड्डाहे ॥
संजइचउत्थभंगे,
मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥ १०४ ॥

चैत्यद्रव्यनो विनाश करनार, मुनिनी घात करनार, प्रवचननो उड्डाह करनार अने साध्वीना च

तुर्थ व्रतनो भंग करनार समकितना लाभ रूप वृक्षना मूलमां अग्नि मूके छे. ॥ १०४ ॥

पूजा करवाना भाव पण महा फलवाला छे.

सुव्वइ दुग्गयनारी,
जगगुरुणो सिंदुवारकुसुमेहिं ॥
पूआपणिहाणेहिं,
उप्पन्ना तियसलोगंमि ॥ १०५ ॥

सांभलीए छीए के, दारिद्रि एवी एक स्त्री सिंदुवारना पुष्पोये करीने प्रभुनी पूजा करवाना प्रणिधानथी—एकाग्रताथी त्रिदशलोक जे देवलोक, तेने विषे उत्पन्न थई. ॥ १०५ ॥

गुरुवंदन करवानुं फल.

तित्थयरत्तं सम्म-
त्तखाइयं सत्तमं तईयाए ॥
वंदणएणं विहिणा,
बद्धं च दसारसीहेणं ॥ १०६ ॥

तीर्थंकरपणुं, क्षायक समकित अने सातमी नरकथी त्रीजी नरकनो बंध (ए त्रण वानां) विधिपूर्वक वंदन करवाथी कृष्णे उपार्जन कर्यां. ॥ १०६ ॥

द्रव्यस्तवनुं स्थापन.

अकसिणपवत्तगाणं,
विरयाविरय ण एस खलुजुत्तो ॥
संसारपयणुकरणे,
दव्वत्थए कूवदिठ्ठंतो ॥ १०७ ॥

समस्त प्रकारे धर्मकार्यमां नहि प्रवर्त्तेला एवा विरताविरति जे श्रावको, तेने संसार पातलो करवाने अर्थे द्रव्यस्तव (आचरणीय छे.) तेने विषे कूवानुं दृष्टांत जाणवुं. ॥ १०७ ॥

क्रोधनुं फल.

अणथोवं वणथोवं,
अग्गीथोवं च [illegible]साय थोवं च ॥
न हु ते विससिअव्वं,

थोवंपि हु तं बहू होई ॥ १०८ ॥

रण थोडुं होय, व्रण थोडुं होय, अग्नि थोडो होय, अने कषाय थोडो होय तो पण तेनो विश्वास न करवो. केम के, थोडुं होय तो ते घणुं थई जाय छे. अर्थात् घणु थतां वार लागती नथी. ॥१०८॥

मिच्छामिदुक्कडंनुं प्रवर्त्तन.

जं दुक्कडंति मिच्छा,
तं भुज्जो का णं अपूरंतो ॥
तिविहेण पडिक्कंतो,
तस्स खलु दुक्कडं मिच्छा ॥ १०९ ॥

जे दुष्कृतने मिथ्या करे, ते दुष्कृत संबंधी कारणने फरीने सेवे नही अने विधिए करीने पडिक्कमे तेनुं खरुं मिथ्यादुष्कृत जाणवुं. ॥ १०९ ॥

जं दुक्कडंति मिच्छा,
तं चेव निसेवइ पुणो पावं ॥
पच्चक्खमुसावाई,

मायानियडिप्पसंगो अ ॥ ११० ॥

जे दुष्कृतने—पापने मिथ्या करे, ते ज पापना कारणने फरीने सेवे, ते प्राणीने प्रत्यक्ष मृषावादी अने मायाकपटना निविड प्रसंगवालो जाणवो. ॥११०॥

मिच्छामिदुक्कड शब्दनो अर्थ.

मिति मिउ मद्दवत्ते,
छत्तीदोसाण छायणे होई ॥
मित्तिअ मेराइठ्ठिओ.
दुत्ति दुगंछामि अप्पाणं ॥ १११ ॥
कत्ति कडं मे पावं,
डत्तिय डेवेमि तं उवसमेणं ॥
एसो मिच्छादुक्कड,
पयक्खरत्थो समासेणं ॥ ११२ ॥

" मि " मृदु मार्दवपणाने विषे छे. " च्छा " दोषनुं आच्छादन करवाने अर्थे छे. " मि " मर्यादामां स्थित थवा माटे छे. " दु " आत्मानी दुगंछा करुं

छुं एम जणाववा माटे छे. "क" म्हारां करेलां पाप एम सूचवे छे. अने "ड" ते पापने उपशम वडे बाली नांखुं छुं एम कहे छे. आ प्रमाणे "मिच्छामिदुक्कड" शब्दना दरेक अक्षरनो अर्थ संक्षेपमात्र जाणवो. ॥ १११ ॥ ११२ ॥

चार प्रकारना तीर्थनुं वर्णन.

नामं ठवणातित्थं,
दव्वंतित्थं च भावतित्थं च ॥
एक्केकंमि य इत्तो,
ऽणेगविहं होइ नायव्वं ॥ ११३ ॥

नाम तीर्थ, स्थापना तीर्थ, द्रव्य तीर्थ अने भाव तीर्थ ए प्रमाणे तीर्थना मुख्य चार भेद छे. ते एकेकाना अनेक प्रकार छे ते जाणी लेवा. ।११३।

दाहोवसमं तन्हा-
इ छेयणं मलपवाहणं चेव ॥
तिहिं अत्थेहिं निउत्तं,

तम्हा तं दव्वओतित्थं ॥ ११४ ॥

दाहनुं उपशमाववुं, तृषानो छेद करवो अने मे लने दूर करवो, ए त्रण अर्थे करीने युक्त होय ते कारणथी तेने द्रव्यतीर्थ कहीए. ॥ ११४ ॥

भावतीर्थनुं स्वरूप.

कोहंमिउ निग्गहिए,
दाहस्स उवसमणं हवइ तित्थं ॥
लोहंमिउ निग्गाहिए,
तन्हाए छेयणं होई ॥ ११५ ॥
अट्ठविहं कम्मरयं,
बहुएहिं भवेहिं संचियं जम्हा ॥
तवसंजमेण धोवइ,
तम्हा तं भावओतित्थं ॥ ११६ ॥

क्रोधनो निग्रह थवाथी दाहना उपशम रूप तीर्थ थाय अने लोभनो निग्रह थवाथी तृषा (तृष्णा)ना छेदन रूप तीर्थ थाय. आठ प्रकारना कर्म रूपी रज

बहु भवे कर्मने संचय करेलां ते तप अने संयमे क
रीने धोवाई जाय-दूर थाय. तेथी तेने भावतीर्थ कहीए.

दंसणनाणचरित्ते,
सुनिउत्तं जिणवरोहिं सव्वेहिं ॥
एएण होइ तित्थं,
एसो अन्नोवि पज्जाओ ॥ ११७ ॥

ज्ञान, दर्शन अने चारित्रवडे युक्त होय तेने सर्व जिनेश्वरोए तीर्थ रूप कह्या छे. तेथी ए रत्नत्रयीना संयुक्तपणावडे तीर्थ होय छे—कहेवाय छे. ए प्रमाण अन्य पर्याय पण जाणी लेवा. ॥ ११७ ॥

सव्वो पुव्वकयाणं,
कम्माणं पावए फलविवायं ॥
अवराहेसु गुणेसु अ,
निमित्तमित्तं परो होइ ॥ ११८ ॥

सर्व जीवो पूर्व भवे करेलां कर्मोनां फल विपाकने पामे छे. अपराधने विषे अने गुणने विषे बीजा तो

निमित्त मात्र ज होय छे. ॥ ११८ ॥

धारिज्जइ इत्तो जल–
निहीविकल्लोलभिन्नकुलसेलो ॥
न हु अन्नजम्मनिम्मिय,
सुहासुहो कम्मपरिणामो ॥ ११९ ॥

पोताना कल्लोले करीने म्होटा पर्वतोने जेणे भेदी नांख्या छे एवा समुद्रने धारण करी शकाय, पण अन्य जन्म निर्मित शुभाशुभ कर्मना परिणामने धारण करी शकाय नही. अर्थात् रोकी शकाय नही.

अकयं को परिभुंजइ,
सकयं नासिज्ज कस्स किरकम्मं ॥
सकयमणुभुंजमाणो,
कीस जणो दुम्मणो होई ॥ १२० ॥

न करेलां कर्म कोण भोगवे छे? अने पोतानां करेलां कर्म कोनां नाश पामे छे. (अर्थात् न करेलां कोइ भोगवतुं नथी अने करेलां कर्म कोइनां

नाश पामतां नथी.) त्यांरे पोताना करेलां कर्मने भोगवतो थको आ माटे प्राणी दुर्मनवालो थायछे?

पौषधनुं फल.

पोसेइ सुहभावे,
असुहाइ खवेइ नत्थि संदेहो ॥
छिंदइ नरयतिरियगइ,
पोसहविहि अप्पमत्तो य ॥ १२१ ॥

पौषधनी विधिने विषे अप्रमत्त—अप्रमादी एवा मनुष्य शुभ भावनुं पोषण करे छे, अशुभ भावनो क्षय करे छे अने नरक तिर्यंचनी गतिनो छेद करे छे. एमां संदेह नथी. ॥ १२१ ॥

जिनपूजाना प्रकार.

वरगंधपुप्फअक्खय,
पईवफलधूवनीरपत्तेहिं ॥
नेविज्जविहाणेण य,
जिणपूआ अट्ठहा भणिया ॥ १२२ ॥

श्रेष्ठ १ गंध, २ पुष्प, ३ अक्षत (चोखा), ४ दीपक, ५ फल, ६ धूप, ७ जलपात्र अने ८ नैवेद्यना विधाने करीने जिनपूजा आठ प्रकारे कहीछे.

जिनेंद्रनी पूजानुं फल.

उवसमइ दुरियवग्गं,
हरइ दुहं कुणइ सयलसुक्खाइं ॥
चिंताईयंपि फलं,
साहइ पूआ जिणंदाणं ॥ १२३ ॥

जिनेंद्रनी पूजा दुरित वर्गने उपशमावे छे, दुःखने दूर करे छे, समस्त सुखने उत्पन्न करे छे अने चिंतातीत—चिंतववाने पण अशक्य एवा फलने—मोक्षफलने साधे छे. ॥ १२३ ॥

धर्मकार्य करवामां विधिनी प्रबलता.

धन्नाणं विहिजोगो,
विहिपक्खाराहगा सया धन्ना ॥
विहिबहुमाणा धन्ना,

विहिपक्खअदूसग धन्ना ॥ १२४ ॥

विधिनो योग धन्य पुरुषोने थाय छे, विधिपक्षना आराधन करनारने सदा धन्य छे, विधिनुं बहुमान करनारने धन्य छे अने विधिपक्षने दूषण आपे नहि तेने पण धन्य छे. ॥ १२४ ॥

आ ग्रंथ भणवाथी थतुं फल:—

संवेगमणो संबो-
हसत्तरिं जो पढइ भव्वजिवो ॥
सिरिजयसेहरठाणं,
सो लहइ नत्थि संदेहो ॥ १२५ ॥

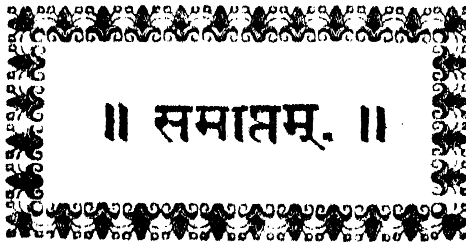
संवेग युक्त मनवाला थया थका जे भव्य जीवो आ संबोधसत्तरि प्रकरण भणे, ते श्री जयशेखर स्थान—मोक्षस्थान प्रत्ये पामे एमां संदेह नथी.॥१२५॥

(अनुष्टुब्वृत्तम्.)

श्रीमन्नागपुरीयाह्व, तपोगणकजारुणाः ॥
ज्ञानपीयूषपूर्णांगाः, सूरिंद्रा जयशेखराः ॥१॥

तेषांपत्कजमधुपा, सूरयो रत्नशेखराः ॥
सारंसूत्रात्समुद्धृत्य, चक्रुःसंबोधसप्ततिं ॥२॥

श्रीमत् नागपुरीय नामना तपगच्छ रूपी कमलने सूर्य समान अने ज्ञान रूपी अमृतवडे पूर्ण शरीरवाला श्री जयशेखर नामना सूरींद्रना चरणकमलने विषे भ्रमर समान श्री रत्नशेखर नामे आचार्ये, सूत्रमांथी सार सार गाथाओनो उद्धार करीने आ संबोधसत्तरि नामे प्रकरणनी रचना करी. ॥ १ ॥ २ ॥



नीचे लखेलां पुस्तको अमारी तरफथी छपाइने बहार पड्यां छे.

तैयार पुस्तको.

पंचप्रतिक्रमणसूत्र अर्थ सहित.	रु. २)
प्रकरणमाला अर्थ सहित.	रु. १॥
पर्यूषण माहात्म्य.	रु. १॥
पूजासंग्रह पद्मविजय कृत.	रु. १॥
पूजासंग्रह वीरविजय कृत.	रु. १॥
देववंदनमाला.	रु. १।
सिंदूरप्रकरण टीका सहित.	रु. ०॥
देवसि राइ प्रतिक्रमण.	रु. ०।
प्रतिक्रमणसूत्र. गुजराती.	रु. १॥
स्नात्रपंचाशिका. गुजराती.	रु. १)
शत्रुंजय माहात्म्य. गुजराती.	रु. ०॥।
जयानंद केवलीनो रास.	रु. १।
सज्झायमाला.	रु. ३

(हालमां छपाय छे.)

१ समकितकौमुदी भाषांतर. (गुजरातीमां)

२ भरतेश्वर बाहुबलिवृत्ति भाषांतर. (गु०)

३ सुलसाचरित्र. मूल, अन्वय अने भाषां तर साथे, पानाना आकारमां. शास्त्रीमां. थोडा दिवसमां छपाववां शरु थशे.

४ शीलोपदेशमाला. मूल, शब्दार्थ, विशेषार्थ अने कथाओ साथे.

५ मुनिपति चरित्र. (विस्तार युक्त)

६ चउसरणपयन्ना सूत्र. मूल अने टीका उपरथी करेला बालावबोध साथे.

७ श्राद्धविधि सटीकनुं भाषांतर.

८ धनाचरित्रनुं भाषांतर.

९ धर्मरत्नप्रकरण. मूल अने टीका उपरथी करेला बालावबोध तेम ज कथाओ साथे.

श्री जैनविद्याशाला.

डोशीवाडानी पोल, अमदावाद.

અમારે અહિં જે જે પુસ્તકો મળે છે, તેની
ટીપ પુસ્તકના અંતભાગમાં આપી છે,
તે શિવાય મુંબઈના શા ભીમસિંહ
માણેકે છપાવેલાં તમામ
પુસ્તકો અમારે ત્યાં
તેજ ભાવે મળી
શકશે.

શ્રી જૈનવિદ્યાશાળા
દોશીવાડાનીપોળ—અમદાવાદ.